संपादकीय

दो शब्द

'ज्ञानवानेन सुखवान् ज्ञानवानेव जीवति।
ज्ञानवानेव बलवान् तस्मात् ज्ञानमयो भव।।'

'निकल रही है उर से आह।
तक रहे सब तेरी राह।
चातक खड़ा चोंच खोले है।
संपुट खोले सिप पड़ी।
मैं अपना घट लिये खड़ा हूँ।
अपनी-अपनी हमें पड़ी'।।

हमारे वर्तमान समाज का हाल भी कुछ ऐसा ही दीख पड़ता है। बहुत सारी सामाजिक समस्याओं के मूल में हमारी यही विचारधारा है। हम सामूहिक समस्याओं से भी कुछ इस तरह बचते हैं, जैसे इसका हमसे कोई सरोकार न हो। यही आगे चलकर जब हमारे ऊपर आती है तब हम समाज को कोसते हैं। इन्हीं कारणों से हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी है। पाश्चात्य देश जहाँ परिवार और समाज के पुनर्निर्माण हेतु प्रयासरत हैं वहीं हम उपनी उसी विशेषता को खोते जा रहें हैं, जो भविष्य के लिए बड़ी चुनौती होगी। अगर हम अपनी पारिवारिक-सामाजिक संस्कृति का संरक्षण न कर सके तो आनेवाली पीढ़ी हमें माफ़ नहीं कर सकेगी और उनके सामने पाश्चात्य देशों की तरह ही अकेलापन, कुंठा, और मनोरोग जैसी समस्याएँ होंगी, जो वर्तमान में हमारे शहरों में दिखने लगी है तथा उनसे उबरने का दूसरा कोई उपाय उनके सम्मुख न होगा। स्वस्थ, दीर्घायु और सुखद जीवन के लिए हमारा प्रसन्न रहना आवश्यक होता है। आज हम बहुत विकास कर चुके हैं, तकनीक ने हमारे जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया है, हमारे जीवन की बहुत सारी जटिलताएँ सरल हो गयी हैं, लेकिन यह भी सत्य है कि इसी विकास और तकनीक ने हमारे जीवन की व्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया है। सुविधाएँ और व्यवस्थाएं बढ़ने के बावजूद हम सुखी और प्रसन्न होने की जगह दबाव, अकेलापन, कुंठा और अनेक शारीरिक- मानसिक विकारों, मनोरोगों से ग्रसित होते जा रहे हैं। इस तरह की अनेक नई-नई समस्याएँ सुरसा की तरह मुंह बाये खड़ी है और हमारे पास कोई निदान नहीं, हम बस बेबस शिकार हैं। यह अत्यंत चिंता का विषय है और हमें सोचने की जरुरत है कि हम कहीं गलत दिशा में तो नहीं बढ़ रहे हैं। हम कितनी भी उन्नति कर लें लेकिन अगर हम सुखी और प्रसन्न नहीं हैं तो सब बेमानी है। इसका एक बड़ा कारण तकनीक का दुरूपयोग और उनपर जरुरत से ज्यादा और बेवजह की निर्भरता भी है। आज की हमारी पूरी पीढ़ी चाहे वो नई, पुरानी या वर्तमान हो, कामकाजी या घरेलु महिलाऐं, बच्चे, बुजुर्ग, युवा, चिकित्सक, शिक्षक, विद्यार्थी सभी इस तकनीक के अभ्यस्त और शिकार हैं। हमें इसकी इतनी बुरी लत लग चुकी है कि हम इसके बिना खुद को असहाय महसूस करने लगे हैं।

इसका सबसे बड़ा कारण हम अपने समाज और परिवार से दुरी बनाते जा रहे हैं, भले ही हमारी आमदनी और क्रय शक्ति बढ़ी हो, भले ही हम सुख-सुविधाओं, घुमने-फिरने पर पहले से बहुत ज्यादा खर्च कर रहे हैं, लेकिन सब के मूल में हमारा सुख-चैन खोता जा रहा है, जिस आनंद को जीवन का मूल उद्देश्य होना चाहिए हम उससे निरंतर दूर होते जा रहे हैं। जीवन के इसी खोते आनंद, लगाव, अपनत्व और अपनों के अभाव में इंसान और खास कर युवा पीढ़ी कृत्रिम आनंद की तलाश नशा और विभिन्न कुकृत्यों, अपराधों में खोजती फिरती है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है और इस पर विचार और पहल करने की आवश्यकता है। अभी वक्त है और हम ज्यादा दूर नहीं निकले हैं। अन्यथा हम अपने आप से भी इतने दूर होते चले जायेंगे कि फिर वापसी संभव न होगी। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने परिवार और समाज से जुड़ें, अपने रिश्तों को मजबूत करें चाहे वो हमारा पारिवारिक हो या सामाजिक। इन्सान को इन्सान बनाये रखने में रिश्तों की भूमिका

बहुत बड़ी होती है। संस्कृत का एक श्लोक है-'संसर्गजा दोषः गुणा भवन्ति'। हम अपने वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब इसका परीक्षण करें तो पाएंगे कि ये सर्वथा सत्य वचन है। हमारे आस-पास ही नहीं दूर-दूर तक बड़ा और अमीर बनने, वैभव और विलासिता का प्रदर्शन करने वालों की कतार बहुत लम्बी है। स्वभाववश हम भी जाने-अनजाने उसी भीड़ और अंध दौड़ का हिस्सा बन गए हैं। उस अंध दौड़ से किसीको क्या मिलना है, किसीको पता नहीं और लगता है शायद परवाह भी नहीं है। बस सभी उस दौड़ में शामिल होना चाहते हैं, दौड़ना चाहते है, चाहे परिणाम जो भी हो।

हमारे पूर्व पुरुषों का जीवन वर्तमान जितना सरल और आसान नहीं था, संसाधनों और सुविधाओं का नितांत अभाव था, लेकिन वो हमसे ज्यादा खुश और सुखी थे क्योंकि उनकी जड़ें मजबूत थीं। वो रिश्तों और समाज के ताने-बाने का एक हिस्सा हुआ करते थे, उनके जीवन में ऐसे कई रिश्ते और लोग थे, समाज और परिवार था, जो विपरीत परिस्थितियों में भी मजबूती से उनके साथ खड़ा था और कैसी भी परिस्थिति में उनको संभाल लेता था। आप वर्तमान परिवेश में जब इन चीजों का हिसाब लगाने बैठेंगे तो बेशक आपका बैंक बैलेंस बहुत ज्यादा होगा लेकिन उपर्युक्त सन्दर्भ में आपका खाता निश्चित ही खाली होगा या संपत्ति के अनुपात में नगण्य ही मिलेगा। बाजारवाद, पूंजीवाद, अस्तित्ववाद, नास्तिकता, अनीश्वरवाद, व्यक्तिवाद, स्वच्छन्दतावाद जैसी पाश्चात्य अवधारणाओं, विविध विमर्शों तथा उनके पीछे दौड़ने की अंधाधुंध होड़ और बेलगाम जीने और विलासिता की उद्दाम लालसा ने पूरी मानवता का बड़ा गर्क कर दिया है। आप सबों के समक्ष इन ज्वलंत मुद्दों को उठाने का उद्देश्य दुष्यंत कुमार के शब्दों में :-

'सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।'

और अंत में, सिर्फ इतना ही कि इस पत्रिका के प्रकाशन में जिनका भी प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहा है, उन सभी विद्वतजनों को धन्यवाद, साधुवाद। इस पत्रिका में जो भी अच्छा है, उसका श्रेय आप सभी गुरुजनों, सुधी पाठकों और साहित्यिकों का है और जो कुछ भी त्रुटि रह गई है उसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। अस्तु। इति शुभम्।

डॉ. दिवाकर चौधरी
प्रधान संपादक